बिहार राज्य और एक अन्य

बनाम

उमेश झा

(जे. एल. कपूर, के. सुब्बा राव, एम. हिदायतुल्ला, जे. सी. शाह और रघुबर दयाल, न्यायमूर्तिगण)

3 मई, 1961

भूमि सुधार—धारा 11—राज्य में संपत्ति का निहित होना—ऐसा अधिनियम जो समाहर्ता को पूर्वनियोजित बंदोबस्ती को निरस्त करने का अधिकार देता है—संवैधानिक वैधता—संशोधन का प्रभाव—बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (बिहार 30 वर्ष 1950), जैसा कि बिहार भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1959 (बिहार 16 वर्ष 1959) द्वारा संशोधित, धारा 4(ज)—भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 31, 31क।

बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 4(ज), जैसा कि बिहार भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1959 द्वारा संशोधित है, समाहर्ता को ऐसे पूर्वनियोजित भूमि अंतरणों को निरस्त करने का अधिकार प्रदान करती है, जो अधिनियम के उद्देश्य को विफल करने के लिए किए गए हों यद्यपि यह उपबंध अपने आप में राज्य द्वारा किसी संपत्ति के अधिग्रहण या उसमें निहित अधिकारों के उन्मूलन अथवा संशोधन का प्रत्यक्ष प्रावधान नहीं करता, तथापि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 31क के अंतर्गत संरक्षित है, क्योंकि जिस अधिनियम का यह अभिन्न अंग है, वह स्वयं उसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु बनाया गया है। अतः इसकी संवैधानिक वैधता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19 तथा 31 के अधीन चुनौती नहीं दी जा सकती।

ठाकुर रघुबीर सिंह बनाम अजमेर राज्य, (1959) अनुपूरक 1 सर्वोच्च न्यायालय प्रतिवेदन 478 — का अनुप्रयोग किया गया।

संशोधन अधिनियम की धारा 3 की सही व्याख्या के अनुसार, धारा 4(ज) का द्वितीय उपबंध पूर्वप्रभावी नहीं माना जा सकता। अतः जहाँ समाहर्ता द्वारा निरस्तीकरण का आदेश संशोधन अधिनियम के प्रवर्तन से पूर्व पारित किया गया हो, वहाँ राज्य सरकार से पूर्व में प्राप्त स्वीकृति पर्याप्त होगी; परंतु जहाँ ऐसा आदेश संशोधन अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात पारित किया गया हो, वहाँ राज्य सरकार द्वारा पश्चात अनुमोदन आवश्यक होगा।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : दीवानी अपील संख्या 425 वर्ष 1957।

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 21 फ़रवरी 1956 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध अपील, जो विविध न्यायिक वाद संख्या 53 वर्ष 1955 से संबंधित है।

अपीलकर्ताओं की ओर से *बी. के. पी. सिन्हा एवं डी. पी. सिंह* ।

उत्तरदाता की ओर से *एल. के. झा एवं आर. सी. प्रसाद* ।

3 मई 1961 न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा सुनाया गया—

सुब्बा राव, न्यायमूर्ति— यह अपील, प्रमाण-पत्र के आधार पर दायर की गई है, जिसमें बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (अधिनियम 30 वर्ष 1950) (जिसे आगे "अधिनियम" कहा गया है), की धारा 4(ज) की व्याख्या का प्रश्न उठता है, जैसा कि बिहार भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1959 (बिहार अधिनियम 16 वर्ष 1959) (जिसे आगे "संशोधन अधिनियम" कहा गया है) द्वारा संशोधित किया गया है।

इस अपील से उत्पन्न तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं। भूखंड संख्या 383 और 1033 दरभंगा जिले के लक्ष्मीपुर उर्फ तरौनी ग्राम में स्थित तालाब हैं। उत्तरदाता का दावा है कि उसने उक्त भूखंडों का बंदोबस्ती वर्ष 1943 में राघोपुर रियासत के जमींदारों से लिया था, जिसका यह भूखंड हिस्सा थे। अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात उक्त रियासत बिहार राज्य में निहित हो गया। इसके बाद शिवनंदन झा तथा लक्ष्मीपुर के कुछ अन्य ग्रामीणों ने समाहर्ता के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि कथित बंदोबस्ती वास्तविक नहीं थी, बल्कि 1 जनवरी 1946 के बाद केवल नाममात्र के रूप में की गई थी

दरभंगा के अपर समाहर्ता ने अधिनियम की धारा 4(ज) के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि उक्त बंदोबस्ती वास्तव में 1 जनवरी 1946 के बाद की गई थी और यह केवल कागजी लेन-देन था। उन्होंने उक्त बंदोबस्ती को निरस्त करते हुए अपने आदेश दिनांक 18 जनवरी 1955 द्वारा उत्तरदाता को निर्देश दिया कि वह 30 जनवरी 1955 तक उक्त भूखंडों का कब्जा छोड़ दे। इस आदेश से असंतुष्ट होकर उत्तरदाता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत पटना उच्च न्यायालय में एक आवेदन दायर किया, जिसमें *परमादेश* या अन्य उपयुक्त विनिर्दिष्ट आदेश जारी कर अपर समाहर्ता के दिनांक 18 जनवरी 1955 के आदेश को निरस्त करने तथा अपीलकर्ताओं को उक्त दो भूखंडों के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने की प्रार्थना की गई। यह आवेदन उच्च न्यायालय की द्वैध पीठ द्वारा विचारित किया गया और विद्वान न्यायाधीशों ने अपने आदेश दिनांक 21 फ़रवरी 1956 द्वारा यह निर्णय दिया कि अपर समाहर्ता को यह अधिकार नहीं था कि वह यह प्रश्न तय करे कि जो बंदोबस्ती *प्रथम दृष्टया* 1 जनवरी 1946 से पूर्व की प्रतीत होती है, वह वास्तव में उस तिथि के बाद की गई थी या नहीं। इस निष्कर्ष के आधार पर अपर समाहर्ता का आदेश अपास्त कर दिया गया। इसके विरुद्ध बिहार राज्य तथा दरभंगा के अपर समाहर्ता ने वर्तमान अपील प्रस्तुत की है।

राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 4(ज) को पूर्वप्रभाव से संशोधित किया गया है, और संशोधित धारा के अंतर्गत समाहर्ता को यह अधिकार है कि वह यह निर्धारित करे कि कोई अंतरण वर्ष 1946 से पूर्व किया गया था या उसके बाद; अतः उच्च न्यायालय का आदेश अब स्थिर नहीं रह सकता।

उत्तरदाता की ओर से विद्वान अधिवक्ता, यद्यपि संशोधन के पूर्वप्रभाव को स्वीकार करते हैं, तथापि धारा 4(ज) में जोड़े गए द्वितीय उपबंध पर निर्भर करते हुए यह तर्क देते हैं कि उक्त उपबंध के अनुसार समाहर्ता का आदेश तब तक प्रभावी नहीं हो सकता और न ही उसके आधार पर कब्जा लिया जा सकता है, जब तक कि उस आदेश की राज्य सरकार द्वारा पुष्टि

न कर दी जाए, और वर्तमान मामले में ऐसी कोई पुष्टि नहीं हुई है। उन्होंने आगे यह भी तर्क दिया कि उक्त धारा की संवैधानिक वैधता संदिग्ध है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अंतर्गत उत्तरदाता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है तथा इसे अनुच्छेद 31क का संरक्षण प्राप्त नहीं है।

उत्तरदाता के अधिवक्ता के इस द्वितीय तर्क का पहले निपटारा किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 31क के अंतर्गत, कोई भी विधि जो राज्य द्वारा किसी संपत्ति के अधिग्रहण या उसमें निहित अधिकारों के उन्मूलन अथवा संशोधन का प्रावधान करती है, उसे इस आधार पर शून्य नहीं माना जाएगा कि वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के विरुद्ध है या उन्हें सीमित करती है। प्रश्न यह है कि क्या अधिनियम की धारा 4(ज) ऐसी विधि है, जो अनुच्छेद 31क के अंतर्गत आती है। अधिनियम की धारा 4(ज) समाहर्ता को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह किसी रियासत में सम्मिलित भूमि के किसी भी अंतरण के संबंध में जांच करे और यदि वह संतुष्ट हो कि ऐसा अंतरण 1 जनवरी 1946 के बाद अधिनियम के प्रावधानों को विफल करने, राज्य को हानि पहुँचाने या उसके अंतर्गत प्रतिकर प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया है, तो उसे निरस्त कर दे। यह कहा गया कि यह धारा *अपने आप में* राज्य द्वारा किसी संपत्ति के अधिग्रहण या उसमें निहित अधिकारों के उन्मूलन अथवा संशोधन का प्रत्यक्ष प्रावधान नहीं करती, और इस कारण इसे संविधान के अनुच्छेद 31क का संरक्षण प्राप्त नहीं है। यह तर्क वस्तुतः अधिनियम की धारा 4(ज) को उसके संदर्भ से पृथक कर देता है और उसके अन्य प्रावधानों के साथ उसके संबंध को नज़रअंदाज़ करते हुए उसकी वैधता की स्वतंत्र रूप से परीक्षा करना चाहता है। धारा 4(ज) अधिनियम का अभिन्न अंग है, और अधिनियम से पृथक कर देने पर वह शून्य में ही कार्य कर सकती है। वास्तव में, इस धारा का उद्देश्य जमींदारों द्वारा अधिनियम के प्रावधानों को विफल करने हेतु किए गए पूर्वनियोजित प्रयासों को निष्प्रभावी करना है। मान लीजिए कि समाहर्ता इस धारा के अंतर्गत किसी राज्य के स्वामी द्वारा भूमि के अंतरण को निरस्त कर देता है; ऐसी स्थिति

में वह भूमि स्वतः राज्य में निहित हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप अंतरणकर्ता और अंतरणग्राही—दोनों के अधिकार समाप्त हो जाते हैं। यह परिणाम इस आधार पर उत्पन्न होता है कि अधिनियम के प्रवर्तन के समय वह भूमि राज्य का ही भाग मानी जाती है।

इसके अतिरिक्त, यह धारा उस अधिनियम का एक भाग है, जिसका उद्देश्य राज्य में निहित अधिकारों का उन्मूलन या संशोधन करना है, और समाहर्ता को जो शक्ति दी गई है कि वह किसी राज्य की भूमि के अंतरण को निरस्त कर सके, वह केवल धोखाधड़ी को रोकने तथा अधिनियम के उद्देश्य को प्रभावी ढंग से प्राप्त करने के लिए है। यह प्रश्न सीधे रूप से इस न्यायालय द्वारा ठाकुर रघुबीर सिंह बनाम अजमेर राज्य (1959) के वाद में उठाया गया था और उसका उत्तर भी दिया गया था। उस वाद में अजमेर मध्यस्थों के उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1955 की संवैधानिक वैधता तथा उसकी धारा 8 को चुनौती दी गई थी। उक्त अधिनियम की धारा 8 समाहर्ता को यह शक्ति प्रदान करती थी कि यदि वह संतुष्ट हो कि कोई पट्टा या अनुबंध सामान्य प्रबंधन के क्रम में नहीं, बल्कि मध्यस्थों के उन्मूलन संबंधी विधि के पूर्वानुमान में किया गया है, तो वह उसे निरस्त कर सकता है। उक्त तर्क को अस्वीकार करते हुए, न्यायमूर्ति वांचू ने न्यायालय की ओर से यह कहा—

> "यह प्रावधान एक स्वतंत्र प्रावधान नहीं है; यह केवल सहायक प्रकृति का है, जिसे अधिनियम के उद्देश्यों को अधिक प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए बनाया गया है ..... ऐसे निरस्तीकरण से अधिनियम के उद्देश्यों की पूर्ति होगी, और इसलिए इसके लिए किया गया प्रावधान अधिनियम का अभिन्न अंग माना जाएगा, यद्यपि यह उसके मुख्य उद्देश्य के लिए सहायक है, और इस प्रकार यह संविधान के अनुच्छेद 31क (1)(क) के अंतर्गत संरक्षित रहेगा।"

[1]

1 [1959] 4 अनुपूरक आई एस.सी.आर.478, 482

उक्त ही तर्क अधिनियम की धारा 4 (ज) पर भी लागू होता है, और उन्हीं कारणों से हम यह निर्णय करते हैं कि अधिनियम की धारा 4 (ज) भी समान रूप से संविधान के अनुच्छेद 31क के अंतर्गत संरक्षित है।

प्रथम प्रश्न संशोधन अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या पर निर्भर करता है। तर्क को समझने के लिए उक्त अधिनियम के महत्वपूर्ण प्रावधानों का अवलोकन करना सुविधाजनक होगा।

धारा 3. बिहार अधिनियम 1950 की धारा 4 में संशोधन — उक्त अधिनियम की धारा 4 में —

(iv) उपधारा (ज) में —

(क) शब्द, अंक तथा अल्पविराम "1 जनवरी, 1946 के बाद किसी भी समय किया गया," हटा दिए जाएंगे और यह माना जाएगा कि वे सदैव से ही हटाए गए थे;

(ख) शब्दों "यदि वह संतुष्ट हो कि ऐसा अंतरण किया गया था," के बाद शब्द, अंक तथा अल्पविराम "1 जनवरी, 1946 के बाद किसी भी समय," जोड़े जाएंगे और यह माना जाएगा कि वे सदैव से ही जोड़े गए थे; तथा

(ग) शब्द "और राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति के साथ" हटा दिए जाएंगे;

(v) उपर्युक्त प्रकार से संशोधित उपधारा (ज) में निम्नलिखित प्रावधान जोड़े जाएंगे, अर्थात् :-

"यह उपबंध किया जाता है कि इस उपधारा के अंतर्गत समाहर्ता द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध, यदि ऐसे आदेश की तिथि से 60 दिनों के भीतर अपील की जाती है, तो वह निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष की जाएगी, जो जिला समाहर्ता के पद से कम का नहीं होगा और वह निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार उसका निपटारा करेगा:

यह भी उपबंध किया जाता है कि किसी अंतरण को निरस्त करने वाला कोई आदेश तब तक प्रभावी नहीं होगा और न ही उसके अनुपालन में कब्जा लिया जाएगा, जब तक कि ऐसे आदेश की राज्य सरकार द्वारा पुष्टि न कर दी जाए।"

उक्त संशोधन के पश्चात् धारा का प्रासंगिक भाग इस प्रकार पढ़ा जाता है:

समाहर्ता को किसी भी अंतरण के संबंध में, जिसमें बंदोबस्ती भी सम्मिलित है, जांच करने की शक्ति होगी ..... यदि वह संतुष्ट हो कि ऐसा अंतरण 1 जनवरी, 1946 के बाद किसी भी समय इस अधिनियम के किसी प्रावधान को विफल करने या राज्य को हानि पहुँचाने अथवा उसके अंतर्गत अधिक क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया था, तो समाहर्ता संबंधित पक्षों को उपस्थित होने और सुने जाने हेतु युक्तिसंगत सूचना देने के पश्चात तथा बिहार राज्य की पूर्व स्वीकृति के साथ ऐसे अंतरण को निरस्त कर सकता है, उसके अधीन दावा करने वाले व्यक्ति को बेदखल कर सकता है और ऐसी संपत्ति का कब्जा उन शर्तों पर ले सकता है, जो समाहर्ता को न्यायसंगत एवं उचित प्रतीत हों।

वर्तमान जांच के लिए महत्वपूर्ण मुख्य अंतर, संशोधन से पूर्व धारा की स्थिति और उसके पश्चात की स्थिति के बीच यह है कि, असंशोधित धारा के अंतर्गत यह एक विवादास्पद प्रश्न था कि क्या समाहर्ता को किसी अंतरण को निरस्त करने की शक्ति थी, चाहे वह 1 जनवरी, 1946 से पहले किया गया हो या बाद में; जबकि संशोधित धारा के अंतर्गत ऐसी शक्ति उसे स्पष्ट और प्रत्यक्ष रूप से प्रदान की गई है। जहाँ मूल धारा के अंतर्गत समाहर्ता को किसी अंतरण को निरस्त करने तथा उसके अधीन दावा करने वाले व्यक्ति को बेदखल करने से पूर्व राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करनी होती थी, वहीं संशोधित धारा के अंतर्गत समाहर्ता द्वारा पारित आदेश तब तक प्रभावी नहीं होगा और वह कब्जा भी नहीं ले सकता, जब तक कि उसके आदेश की पुष्टि न हो जाए। संक्षेप में प्रश्न यह है कि क्या संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया द्वितीय उपबंध भूतलक्षी प्रभाव रखता है, अर्थात् क्या संशोधन अधिनियम से

पूर्व समाहर्ता द्वारा पारित आदेश, भले ही वह राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से पारित किया गया हो, उसके प्रभावी होने के लिए फिर भी राज्य सरकार द्वारा पश्चात् पुष्टि आवश्यक होगी।

राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता का यह कथन है कि धारा 3 (iv) (क) और (ख) द्वारा किए गए संशोधन भूतलक्षी हैं, किन्तु संशोधन अधिनियम की धारा 3 (v) द्वारा किया गया संशोधन भावी है। यह कथन शब्द और आशय दोनों की दृष्टि से उचित प्रतीत होता है। संशोधन अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (iv) के खंड (क) और (ख) में प्रयुक्त भिन्न शब्दावली, विशेषकर विलोपन के संबंध में, इस बात का समर्थन करती है। जहाँ खंड (क) में यह कहा गया है कि विलोपन सदैव से किया हुआ माना जाएगा, वहीं खंड (ग) में केवल यह कहा गया है कि वहाँ उल्लिखित शब्द हटाए जाएंगे, जिससे स्पष्ट होता है कि पहले वाले में विलोपन को स्पष्ट रूप से भूतलक्षी बनाया गया है, जबकि दूसरे में वह आवश्यक रूप से भावी है। यदि यही सही व्याख्या है, तो संशोधन के प्रभावी होने से पूर्व समाहर्ता द्वारा पारित आदेशों के संबंध में पूर्व स्वीकृति की शर्त लागू बनी रहेगी। यदि उक्त उपबंध को भूतलक्षी प्रभाव दिया जाए, तो यह संशोधन अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (iv) के खंड (ग) से उत्पन्न परिणाम के प्रत्यक्ष विरोध में होगा। ऐसी स्थिति में, राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से आदेश पारित किया जा चुका हो और समाहर्ता द्वारा कब्जा भी ले लिया गया हो, फिर भी उसे पुनः वैध बनाने के लिए राज्य सरकार की अतिरिक्त पुष्टि की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसी व्याख्या न केवल विधानमंडल पर अनावश्यक पुनरुक्ति का आरोप लगाएगी, बल्कि किसी पक्ष को केवल तकनीकी आधार पर समाहर्ता द्वारा लिए गए कब्जे की भूमि की पुनः बहाली की मांग करने का अवसर भी प्रदान करेगी। यहाँ तक कि ऐसे मामलों में भी, जहाँ समाहर्ता द्वारा कब्जा नहीं लिया गया हो, यह विसंगति बनी रहेगी, क्योंकि दो प्रकार की स्वीकृतियों की आवश्यकता होगी। वैकल्पिक व्याख्या से धारा का संचालन सरल और सुचारु हो जाता है तथा उक्त विसंगति से बचा जा सकता है, अतः हम उसी को स्वीकार करना उचित समझते हैं, विशेषकर जब वह धारा में प्रयुक्त शब्दों के सामान्य अर्थ के अनुरूप है। परिणामतः, संशोधन

अधिनियम से पूर्व समाहर्ता द्वारा पारित आदेश के संबंध में प्राप्त पूर्व स्वीकृति पर्याप्त होगी, और संशोधन अधिनियम के पश्चात् पारित आदेश के लिए राज्य सरकार की पश्चात् पुष्टि आवश्यक होगी।

फिर भी, उत्तरदाता की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय ने, संभवतः उत्तरदाता के प्रारंभिक आपत्ति को स्वीकार करते हुए, इस प्रश्न पर विचार नहीं किया कि क्या समाहर्ता द्वारा की गई जांच धारा के प्रावधानों के कठोर अनुपालन में की गई थी, तथा क्या आदेश पारित करने से पूर्व राज्य सरकार की स्वीकृति प्राप्त की गई थी। उच्च न्यायालय में दायर याचिका के समर्थन में प्रस्तुत शपथपत्र में ऐसा कोई विशिष्ट आरोप नहीं है कि ऐसी जांच नहीं की गई या ऐसी स्वीकृति प्राप्त नहीं की गई। न ही अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय में बहस के दौरान यह प्रश्न उठाया। इन परिस्थितियों में, हम यह उचित नहीं समझते कि उत्तरदाता को इस न्यायालय के समक्ष पहली बार यह प्रश्न उठाने की अनुमति दी जाए। अतः हम इस तर्क को अस्वीकार करते हैं।

परिणामस्वरूप, हम उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हैं और अपील को स्वीकार करते हैं। किन्तु इस प्रकरण की परिस्थितियों को देखते हुए, हम यह निर्देश देते हैं कि प्रत्येक पक्ष अपने-अपने व्यय स्वयं वहन करेगा, यहाँ तथा उच्च न्यायालय में।

अपील स्वीकार की जाती है।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।